मनोविज्ञानवेत्ता और शिक्षाविद् जेरोम ब्रूनर के सीखने के सिद्धान्तों ने दुनियाभर के शिक्षा चिन्तन को प्रभावित किया है। इन सिद्धान्तों से शिक्षा प्रक्रियाओं और पाठ्यचर्या निर्माण के लिए व्यापक दिशा–निर्देश निकलते हैं। जेरोम ब्रूनर व्यक्ति की अन्तर्ज्ञानात्मक (Intutive knowledge) योग्यता को महत्त्व देते हुए उसके विकास की पैरवी करते हैं और विषयवस्तु को कक्षावार बांटने का विरोध करते हुए कहते हैं कि कोई भी विषय किसी भी स्तर पर प्रभावकारी ढंग से पढ़ाया जा सकता है बशर्ते कि बच्चे के पूर्वज्ञान को आधार बनाया जाए। दृश्य–श्रव्य माध्यमों एवं सहायक शिक्षण सामग्री पर समकालीन शिक्षा में दिए जाने वाले अतिशय जोर की आलोचना करते हुए वे सीखने की प्रक्रिया में शिक्षक की अहम भूमिका को रेखांकित करते हैं।

क्या, कब और कैसे पढ़ाएं :

डॉ. जेरोम ब्रूनर के विचार

चतर सिंह मेहता

सोवियत संघ ने सबसे पहले अन्तरिक्ष की खोज के लिए स्पूतनिक छोड़ा तो संयुक्त राज्य अमेरिका में हलचल मच गई। अमेरिकावासी सोचने लगे कि वे वैज्ञानिक और तकनीकी क्षेत्र में रूस से पिछड़ गए हैं और यदि उन्होंने वैज्ञानिक व औद्योगिक क्षेत्र में अपनी प्रगति को तीव्रता नहीं दी तो सोवियत रूस के सामने अमेरिकी अस्तित्व को खतरा उत्पन्न हो जाएगा। इस संकट की प्रतीति के कारण अमेरिका में विज्ञान शिक्षा को एक नया बल मिला। नए पाठ्यक्रम बनने लगे और नई विधियों पर विचार आरम्भ हुआ। अमेरिका की राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी ने देश के 34 विख्यात विद्वानों की सन् 1959 में एक गोष्ठी आयोजित की। इस गोष्ठी में ऐसे वैज्ञानिक थे जो पाठ्यक्रम प्रायोजनाओं में कार्यरत थे और पाठ्यपुस्तक लेखन, नवीन पाठ्यक्रम, शिक्षण और सहायक सामग्री निर्माण से सम्बद्ध थे। उनके अतिरिक्त ऐसे मनोविज्ञानवेत्ता भी उपस्थित थे जिन्होंने अनुसंधान के अपने कार्यकाल का अधिकांश समय बुद्धि, अधिगम, स्मृति, विचार एवं उत्प्रेरणा विषयक खोजों में लगाया था। मनोवैज्ञानिक भी विभिन्न विचारधाराओं वाले थे- व्यवहारवादी, गेस्टाल्टवादी, मनोमितिक, जेनेवा स्कूल के विकासवादी आदि। सम्मेलन में अध्यापक, संकायाध्यक्ष और दृश्य-श्रव्य साधन विशेषज्ञ आदि सभी पेशेवर शिक्षकों का प्रतिनिधित्व था। दो इतिहासकार भी थे। भिन्न क्षेत्रों के प्रतिनिधि विद्वानों के इस सम्मेलन के मूल में धारणा यह थी कि इसे केवल विज्ञान शिक्षण तक सीमित रखना बुद्धिमतापूर्ण कार्य नहीं होगा। अंततः शिक्षण की समस्याएं तो सभी संदर्भ में प्रायः समान हैं और सही परिप्रेक्ष्य की दृष्टि से यही लाभदायक था कि विज्ञान शिक्षण के निष्कर्षों की तुलना इतिहास जैसे मानविकी क्षेत्रों से भी की जाए।

यह गोष्ठी इन प्रश्नों पर विचार करने के लिए आयोजित की गई कि क्या, कब और कैसे पढ़ाया जाए ? पाठ्यक्रम निर्माण में निखार लाने के लिए किस प्रकार के अनुसंधान व खोज की आवश्यकता है ? विषय की संरचना पर जोर देने का क्या अभिप्राय है ? छात्रों में पढ़ने के प्रति रुचि कैसे जागृत की जाए ? सर्वोपरि प्रश्न यह था कि पढ़ाई किस प्रकार रुचिकर व प्रभावकारी हो सकती है और इसके लिए किस प्रकार के पाठ्यक्रम की आवश्यकता है ?

चोटी के आधुनिक शिक्षाशास्त्री डॉ. जरोम ब्रूनर इस गोष्ठी के निदेशक थे। उन्होंने इस महत्त्वपूर्ण गोष्ठी का सार उनके द्वारा लिखित

लेखक परिचय

1950 में सहायक शिक्षक से कार्य आरम्भ, बीकानेर प्रौढ़ साक्षरता समिति के सात वर्ष तक मानद सचिव व कई समितियों के सदस्य रहते हुए अनेक पुस्तकों का अनुवाद एवं लेखन। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में लेख प्रकाशित। संप्रति : 'शिक्षा व विकास' विषयक क्षेत्र में चिन्तन, अध्ययन अनुसंधान एवं परामर्श में स्वतंत्र रूप से कार्यरत।

सम्पर्क

2/192, कुड़ी भगतासनी हाऊसिंग बोर्ड, जोधपुर-342005

पुस्तक 'प्रोसेस ऑफ एज्युकेशन' विन्टेज बुक्स, न्यूयार्क, 1960 में दिया है। पुस्तक में गोष्ठी में चर्चित विषयों के आधार पर जिन सिद्धान्तों का विवेचन किया है वे अमेरिका की शिक्षा के लिए ही नहीं, किसी भी देश, क्षेत्र, काल के लिए सतत महत्त्व के हैं। आरम्भ में ही वे लिखते हैं कि किसी भी सीखने की क्रिया का पहला उद्देश्य उससे प्राप्त होने वाले आनन्द के अतिरिक्त यह होता है कि वह भविष्य में किसी कार्य में सहायक हो। सीखकर कहीं पहुंच गए इतना ही यथेष्ठ नहीं है, सीखे हुए की मदद से बाद में भी आगे चलते रहना सम्भव होना चाहिए। उनके अनुसार शिक्षा भविष्य में दो प्रकार से काम आती है- पहला, जिन कार्यों को मूलतः हमने करना सीखा है, अनुरूप परिस्थितियों में उस ज्ञान का उपयोग करना। मनोवैज्ञानिक इस क्रिया को सीखने का विशिष्ट अन्तरण (स्पेसिफिक ट्रान्स्फर ऑफ ट्रेनिंग) कहते हैं। इसे आदतों व संबंधों का विस्तार कहें तो अधिक अच्छा रहेगा पर मुख्यतया इसका उपयोग तो उन तक ही सीमित होता है जिन्हें प्रायः हम कुशलताएं कहते हैं। दूसरा प्रकार है, जहां पहले से आयत ज्ञान के द्वारा आगे का कार्य अधिक कुशलतापूर्वक किया जा सके जिसे हम सहूलियत के लिए अविशिष्ट अन्तरण कहते हैं। पर इसे सिद्धान्तों व अभिवृत्तियों का अन्तरण कहना अधिक सही है। सारांश यह है कि इसमें पहले कौशल नहीं, आधारभूत विचार सीखा जाता है जिसका बाद में आने वाली समस्याओं को अर्जित आधारभूत विचार के विशिष्ट उदाहरणों के रूप में उपयोग किया जा सकता है। इस प्रकार का अन्तरण शिक्षण प्रक्रिया का आधार है और ज्ञान लगातार विस्तृत व गहन करता है।

यदि ये बातें शिक्षक और पाठ्यक्रम निर्माता के लिए महत्त्वपूर्ण आधार बन जाएं और उसके अनुसार कार्य होने लगें तो आज शिक्षा जगत का काफी संकट दूर हो सकता है। पर कार्य बहुत कठिन है। एक सामान्य शिक्षक सामान्य परिस्थितियों में इसे किस प्रकार पूरा कर सकता है। यह विचारणीय विषय है। डॉ. ब्रूनर ने इस पुस्तक में ऐसे सभी प्रश्नों का उत्तर देने का प्रयत्न किया है।

सीखने की प्रक्रिया पर बहुत शोध कार्य हुए हैं और इसकी संकल्पना में भी परिवर्तन आए हैं। कभी सामान्य समझ के विकास पर बल रहा तो कभी विशेष कुशलताओं के अर्जन पर, लेकिन इस विषय पर मनोवैज्ञानिकों का ध्यान कम ही गया कि शिक्षार्थियों को ज्ञान का भीतरी ढांचा या किसी बात का मर्म कैसे पकड़ में आ सकता है। डॉ. ब्रूनर का विचार है कि शिक्षार्थियों को जो भी विषय पढ़ाएं उस विषय की मूल संरचना का ज्ञान कराया जाए। संरचना के अध्ययन का उत्तम उदाहरण प्रायः मातृभाषा अध्ययन में देखा जा सकता है। किसी वाक्य की मुख्य संरचना पकड़ में आते ही बालक दनादन कई वाक्यों की रचना तेजी से करना सीख जाता है जो उसी नमूने पर बने होते हैं, लेकिन जिनका विषय मूल वाक्य से भिन्न होता है। और इस प्रकार बिना अर्थ बदले वाक्यों के रूपान्तरण पर अधिकार होते ही बालक और अधिक विविधता वाले वाक्य बनाने में समर्थ हो जाता है।

आज कक्षाओं में जो भी विषयवस्तु पढ़ाई जाती है, वह एकांगी होती है। उस विषय पर उपलब्ध सामग्री से उसका संबंध सीमित ही जोड़ा जाता है और इस प्रकार वह आगे के अध्ययन को सरल बनाने व उसे भली प्रकार समझने में कोई विशेष मदद नहीं करती। आवश्यकता इस बात की है कि छात्रों को एक बात का दूसरी बातों से संबंध स्थापित कर पढ़ाई जाएं। किसी भी ज्ञान को एकांगी रूप में देने से वह छात्र की स्मरण शक्ति में न तो अधिक देर तक रहता है और न उसका भविष्य में उपयोग ही किया जा सकता है। आज हम देख रहे हैं कि बहुत से छात्र पढ़ाई में मन नहीं लगाते और अनुशासनहीनता के कार्य करते हैं। निश्चय ही, अन्य कारणों में एक मुख्य कारण यह भी है कि शिक्षण विधियां और पाठ्यक्रम इतने घिसे-पिटे हैं कि वे छात्रों को अर्थपूर्ण नहीं लगते।

प्रश्न यह उपस्थित होता है कि ऐसा पाठ्यक्रम कैसे बनाया जाए जिसे साधारण अध्यापक साधारण छात्रों को पढ़ा सके और साथ ही साथ जिसमें विभिन्न विषयों के आधारभूत व मूलभूत सिद्धान्त भी विवित हो सकें। डॉ. ब्रूनर कहते हैं कि पाठ्यक्रम निर्माण का कार्य उनसे सम्पन्न कराया जाए जो विषय के पूर्ण ज्ञाता हों। उनका तो यहां तक कहना है कि प्राथमिक विद्यालय के छात्रों को इतिहास, गणित या किसी भी विषय में क्या पढ़ाया जाए इसका निश्चय उन व्यक्तियों की सहायता से किया जाना चाहिए जो इन विषयों में पूर्णतया पारंगत हों और गहरी दृष्टि वाले हों। आज अमेरिका में तो यह प्रवृत्ति चल रही है कि विज्ञान विषयों की प्राथमिक कक्षाओं के पाठ्यक्रम भी विषय के निष्णात वैज्ञानिक बनाते हैं, इसमें उच्च कोटि के मनोवैज्ञानिक भी सम्मिलित होते हैं। राष्ट्रीय सुरक्षा के संकट के कारण विश्वविद्यालयों के प्रख्यात वैज्ञानिक विद्यालय स्तर के पाठ्यक्रमों में रुचि लेने लगे। इसी प्रकार निर्मित भौतिक विज्ञान के पी.एस.एस.सी. पाठ्यक्रम से भारत में भी काफी विज्ञान शिक्षक परिचित हैं। हमारे यहां कई लोग यह सोचते हैं कि जो व्यक्ति जिस स्तर पर पढ़ाते हैं, उनका पाठ्यक्रम निर्माण में पूर्ण योग होना चाहिए। वास्तव में किसी भी ज्ञान क्षेत्र के शीर्षस्थ व्यक्ति और मनोवैज्ञानिक मिलकर ही यह निर्णय भली प्रकार कर सकते हैं कि किस स्तर पर क्या पढ़ाया जाए ? अपवाद भले ही हों पर किसी क्षेत्र के शीर्षस्थ व्यक्ति विद्यालयों में साधारणतया उपलब्ध नहीं होते।

सामान्यतया किसी भी विषय की विषयवस्तु को कक्षाओं के अनुसार बांट दिया जाता है और काफी सीमा तक यह धारणा बन गई है कि कोई भी विषय किसी विशेष कक्षा से ही आरम्भ किया

जा सकता है, इससे पूर्व नहीं। पर डॉ. ब्रूनर ने इस बात पर बल दिया कि कोई भी विषय किसी भी स्तर पर प्रभावकारी ढंग से पढ़ाया जा सकता है। वे कहते हैं कि यह साहसी प्राक्कल्पना है परन्तु पाठ्यक्रम के बारे में विचार के लिए आवश्यक है। उनके विचार से कोई साक्ष्य ऐसा नहीं है कि इसके विपरीत जाता हो। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि वह सामग्री बालक के सम्मुख किस प्रकार प्रस्तुत की जाती है। विकास के प्रत्येक स्तर पर बालक का विश्व को देखने का एक विशेष तरीका होता है। किसी भी उम्र के बालक के सामने विषय की संरचना को उसी प्रकार प्रस्तुत किया जाए। जिस प्रकार से कि वह अपने तरीके से दुनिया को देखता है। यदि बालक के वर्तमान ज्ञान और वातावरण से नया ज्ञान आरम्भ करें तो वह बोधगम्य होगा। इस संबंध में प्रारम्भिक गणित के बहुत ही अनुभवी शिक्षक डेविड पेज के कथन का उल्लेख किया गया है- 'जहां तक मैं समझ पाया हूं, छोटे बच्चे प्रौढ़ों की तुलना में लगभग हर बात फुर्ती से सीखते हैं बशर्ते कि जो उन्हें सिखाया जाए वह उन्हें उन्हीं शब्दों में सिखाया जाए जिन्हें वे जानते हैं। जब मैं गणितज्ञों से कहता हूं कि चौथी कक्षा के शिक्षार्थी 'समुच्चय सिद्धान्त' का काफी अंश सीख सकते हैं तो उनमें से कुछ उत्तर देते हैं- जरूर, जरूर। उनमें से अधिकांश तो भौंचक्के रह जाते हैं। वे समझते हैं कि 'समुच्चय सिद्धान्त' तो तत्वतः ही कठिन है, लेकिन उनका ऐसा सोचना सर्वथा गलत है। हमें तो उस दिन का इन्तजार करना है जिस दिन समुचित दृष्टिकोण और उसे प्रस्तुत करने के लिए अनुकूल भाषा का आविर्भाव हो जाए।'

आज पाठ्यक्रम निर्माण के क्षेत्र में विशेषकर विज्ञान विषयों में जो परिवर्तन हो रहे हैं, वे प्रायः इसी धारणा के फलस्वरूप हैं। बहुत का माध्यमिक स्तर पर समावेश किया गया है और माध्यमिक स्तर पर पढ़ाई जाने वाली कई बातें प्राथमिक स्तर पर आ गई हैं। विज्ञान की प्रगति और ज्ञान के तेजी से प्रसार के साथ शिक्षा को भी गतिशील रहना पड़ेगा और बड़ी सावधानी से चुनाव करना होगा कि कौनसी विषय-वस्तु किस स्तर पर पढ़ाई जाए। जब भी पाठ्यक्रम में परिवर्तन होता है और उच्च कक्षाओं में पढ़ाई जाने वाली विषय-वस्तु निम्न कक्षाओं के लिए निर्धारित की जाती है तो सामान्य रूप से विरोधी प्रतिक्रिया होती है और यही टिप्पणी की जाती है कि वह पाठ्यक्रम स्तरानुकूल नहीं है। स्तरानुकूलता का निर्णय करना कोई आसान कार्य नहीं है परन्तु विरोध बड़े ही सरल रूप से व्यक्त कर दिया जाता है। ज्ञान के तेजी के साथ विस्तार के साथ अब यह आवश्यक हो गया है कि पुरानी विषयवस्तु पर पुनर्विचार करें और उसे समयानुकूल बनाए रखने के लिए निरन्तर परिवर्तन करते रहें। संचार साधनों के कारण आज के बालक का ज्ञान पहले के बालक से कई पक्षों में स्वतः ही अधिक हो गया है और आवश्यकताएं भी बदल गई हैं। यह तो पढ़ाने की विधि और विषयवस्तु के संयोजन पर निर्भर है कि बड़ी से बड़ी दिखने वाली संकल्पना छोटे से छोटे स्तर पर किस प्रकार स्पष्ट की जाए ? निश्चय ही डॉ. ब्रूनर की प्राक्कल्पना पर गम्भीरता से विचार और प्रयोग करने की आवश्यकता है।

सीखने की गति तेज करने के लिए पुरस्कार और दंड की भूमिका के बारे में बहुत कुछ लिखा गया है और यह विधि विद्यालयों में प्रचलित भी है परन्तु इस बारे में बहुत कम ध्यान दिया गया है कि छात्र में सीखने के प्रति स्वयं ही रुचि व जिज्ञासा जागृत हो और वह खोज के प्रति आकर्षित हो सके। डॉ. ब्रूनर के विचार से किसी शिक्षार्थी को कठिन सामग्री का ज्ञान देने का तरीका यह है कि उसे अवसर देकर अपनी पूरी क्षमता के उपयोग की चुनौती दी जाए ताकि वह पूरा और प्रभावी रूप से कार्य करने का आनन्द अनुभव कर सके। यह कार्य कक्षा में तल्लीनता लाए बिना संभव नहीं है। ऐसा कभी-कभार ही होता है। यह एक महत्त्वपूर्ण विषय है जिस ओर डॉ. ब्रूनर ने हमारा ध्यान खींचा है। पुरस्कार या दंड के कारण कृत्रिम आकर्षण कब तक ? हमारी शिक्षण नीति में मूल बात को गौण मानकर बाहरी आकर्षण पर निर्भरता बनाए रखने से हम शिक्षा का कहां तक हित कर रहे हैं, यह एक बहुत ही आधारभूत प्रश्न है जिसका हमें उत्तर देना है। परन्तु मूलभूत प्रश्न यह है कि इसके अतिरिक्त हम क्या करते हैं। यदि पुरस्कार और दंड को ही अन्तिम मान लिया जाता है जैसा कि सामान्यतया आज माना जाता है तो फिर डिग्री प्राप्त करने के बाद सीखना बन्द या दंड का भय मिट गया तो सीखना बन्द। दोनों ही बातें हानिकारक हैं। क्या हम शिक्षण प्रक्रिया को इस प्रकार नहीं बना सकते हैं कि पढ़ने में बालक स्वयं ही आनन्द का अनुभव करे व तल्लीन हो जाए। निस्संदेह कठिनाइयां व बाधाएं बहुत हैं पर इस ओर किए जाने वाले प्रयत्नों की उपादेयता भी अस्वीकार नहीं की जा सकती।

अध्ययन में तल्लीनता कैसे आए ? आज की पढ़ाई में और परीक्षा में भी शाब्दिक या संख्यात्मक सूत्रों को दोहराने की छात्र की योग्यता पर अधिक जोर दिया जाता है। फल यह होता है कि छात्र अन्तर्ज्ञान का विकास नहीं कर सकता। भौतिकी, गणित आदि कई विषयों में अन्तर्ज्ञान का विकास करना एक उद्देश्य माना जाता है जिसमें छात्र बिना अधिक समय लगाए हल तक पहुंच सके। अन्तर्ज्ञानात्मक चिन्तन के स्वरूप के बारे में प्रश्न सम्भवतः दो बातों पर केन्द्रित होते हैं- अन्तर्ज्ञानात्मक चिन्तन क्या है और इसे कौनसे तत्व प्रभावित करते हैं ? अन्तर्ज्ञानात्मक चिन्तन की अपेक्षा विश्लेषणात्मक चिन्तन के बारे में कई ठोस बातें कही जा सकती हैं। विश्लेषणात्मक चिन्तन के सोपान हैं और वे स्पष्टतया दूसरे व्यक्ति को बताए भी जा सकते हैं। इसमें अनुसंधान के सिद्धान्त और सांख्यिकीय विश्लेषण को प्रयुक्त करते हुए आगमन या प्रयोग की प्रक्रिया भी अपनाई जा

सकती है। परन्तु अन्तर्ज्ञानात्मक चिन्तन में सावधानीपूर्वक निश्चित किए हुए सोपान नहीं होते। इसमें सम्पूर्ण समस्या के अस्पष्ट बोध के आधार पर ही चेष्टाएं की जाती हैं और व्यक्ति मुश्किल से ही यह बता सकता है कि वह उत्तर उसने कैसे निकला है। अन्तर्ज्ञानात्मक चिन्तन विषय क्षेत्र की अच्छी जानकारी व उसकी संरचना पर आधारित होता है परन्तु बाद में निगमनात्मक-आगमनात्मक विश्लेषण पद्धति से निष्कर्षों की जांच करनी होती है। डॉ. ब्रूनर की राय में अन्तर्ज्ञानात्मक चिन्तन और विश्लेषणात्मक चिन्तन की पूरक प्रकृति स्वीकार की जानी चाहिए। क्योंकि अन्तर्ज्ञानात्मक चिन्तन से कोई भी व्यक्ति समस्या का प्रायः ऐसा हल निकाल लेता है जो विश्लेषणात्मक चिन्तन से या तो निकाल ही नहीं सकता या निकालता है तो बहुत धीरे-धीरे। बाद में विश्लेषणात्मक चिन्तन से उसे सिद्ध किया जा सकता है।

डॉ. ब्रूनर मानते हैं कि अन्तर्ज्ञानात्मक योग्यता की पहचान करना और उसे स्वरूप देना आसान काम नहीं है। इस पर अनुसंधान की आवश्यकता है पर इतना तो कहा ही जा सकता है कि विषय की संरचना के अच्छे ज्ञान से छात्रों में अन्तर्ज्ञानात्मक ढंग से समस्याओं के हल में प्रभावोत्पादकता बढ़ती है।

सीखने के सहायक साधन के रूप में क्या छात्रों को अटकल लगाने को प्रोत्साहित किया जाए ताकि वे अन्त में बुद्धिमत्तापूर्वक अनुमान लगाने में सक्षम हो सकें। उनकी राय में बहुत-सी ऐसी स्थितियां होती हैं जहां अटकल लगाना वांछनीय होता है और यहां वह अन्तर्ज्ञानात्मक चिन्तन का काफी अंश तक विकास करने में सहायक होता है। सही रूप में कई अटकलों के लिए परिष्करण की आवश्यकता है, अटकल लगाने का अभ्यास जरूरी है पर आज कई विद्यालयों में अटकल लगाने को दंडनीय समझा जाता है या सुस्ती का लक्षण माना जाता है। डॉ. ब्रूनर ने इस बात पर बल दिया है कि अन्तर्ज्ञानात्मक चिन्तन के विकास के लिए छात्र को अटकल लगाने को प्रोत्साहित किया जाए ताकि वे अन्त में बुद्धिमत्तापूर्वक अनुमान लगाने में सक्षम हो सकें। निश्चय ही यह कोई नहीं चाहेगा छात्र को अटकल लगाने के अतिरिक्त और कुछ न करने की शिक्षा दी जाए। क्या शिक्षार्थी के लिए यह अधिक अच्छा नहीं होगा कि जब वह शीघ्र सही उत्तर न दे सके तो विस्मित बैठा रहने के स्थान पर अटकल ही लगाए ? यह स्पष्ट है कि इसके लिए छात्र को ऐसा प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए कि वह अटकलों की यर्थाथता को स्वीकार कर सके और वे अटकलें उसके ज्ञान के आधार पर हों। बात साधारण शिक्षक के दृष्टिकोण और पद्धितियों के परिवर्तन की है और इसके लिए बहुत ही समझदार अध्यापक की आवश्यकता है जो मूर्खतावश या नासमझी से की हुई त्रुटि और अन्तर्ज्ञान के उपयोग से की गई त्रुटि में भेद कर सके। डॉ. ब्रूनर भी यह मानते हैं कि माध्यमिक विद्यालय के अध्यापक से यह आशा करनी बहुत ज्यादा है परन्तु अन्तर्ज्ञानात्मक चिन्तन व मापन की प्रणालियों के विकास के लिए अनुसंधान की अत्यन्त आवश्यकता है।

मूल रूप से स्तर उन्नयन की समस्या जितनी पाठ्यक्रम निर्माण से संबंधित है उतनी ही कक्षा शिक्षण से। कक्षा शिक्षण की सर्वोपयुक्त स्थिति डॉ. ब्रूनर के अनुसार वह होती है जब छात्र न तो पूर्णतया उदासीन हो और न पूर्णतया आवेशित हों। उनका विचार है कि प्रतियोगितानिष्ठ सघन कार्यक्रमों वाली व्यस्तता छात्रों को मनन, आत्म-निरीक्षण, संशोधन आदि का अवसर नहीं देती और दूसरी ओर अत्यधिक नियमिततानिष्ठ कार्यक्रम जिसमें छात्रों को धैर्यपूर्वक क्रम की प्रतीक्षा करनी पड़ती है, उन्हें निश्चेष्ट, उदासीन और अन्त में निराशापूर्ण बना देती है। कक्षा शिक्षण की नित्यप्रति की यह समस्या महत्त्वपूर्ण है। हम किसी विषय में तात्कालिक रुचि उत्पन्न करने पर तो ध्यान देते हैं पर किसी विषय में सुदीर्घकाल तक रुचि उत्पन्न करने की आवश्यकता पर ध्यान नहीं देते। फिल्म, दृश्य-श्रव्य साधनों के उपयोग से तात्कालिक रुचि उत्पन्न की जा सकती है, पर वे साधन अन्ततोगत्वा छात्र को निश्चेष्ट बना देते हैं और तब वे हर बार प्रतीक्षा करते रहते हैं कि उन्हें उत्प्रेरित करने के लिए कब कोई पर्दा उठाए या कोई साधन प्रत्युक्त करे। शिक्षक और शिक्षक-प्रशिक्षकों के लिए यह बात विशेष रूप से विचारणीय है। पढ़ाई के उत्प्रेरक बाहरी साधन न होकर मूलतः भीतरी साधन होने चाहिएं क्योंकि मात्र निश्चेष्ट दर्शक बने रहना हानिकारक है। प्रयत्न यह होना चाहिए कि विद्यालयी कार्यक्रम में जड़ता न हो और छात्रों की अवधान प्रक्रिया को अधिक से अधिक स्वायत्त बनाने की चेष्टा की जाए।

भौतिक साधनों की प्रगति के साथ-साथ विज्ञान व तकनीकी विषयों की मांग बढ़ रही है और शिक्षा पर अधिक धन खर्च किया जा रहा है। विज्ञान विषयों पर अत्यधिक बल दिए जाने के कारण कई योग्यता छात्रवृत्तियों की व्यवस्था की गई है। योग्यता छात्रवृतियों पर अत्यधिक बल दिए जाने के कारण महत्त्व फिर पढ़ने-लिखने का नहीं, छात्रवृत्तियों का ही हो जाएगा। डॉ. ब्रूनर ने इस खतरे की ओर भी ध्यान आकर्षित किया है और कहा है कि योग्यता के कारण छात्रवृत्तियां और पुरस्कार विज्ञान और गणित में ही दिए जाएंगे तो अन्य बौद्धिक विषयों के मूल्य घट जाने की सम्भावना है। विज्ञान के अतिरिक्त अन्य विषयों में अच्छे अध्यापकों को अध्यापन की ओर आकर्षित करना भी कठिन हो जाएगा। जिस प्रकार विज्ञान व गणित में पाठ्यक्रम सुधार की आवश्यकता है उसी प्रकार मानविकी और सामाजिक विज्ञानों के पाठ्यक्रमों और पढ़ाई के सुधार के लिए भी कार्य करना पड़ेगा। यद्यपि इन विषयों पर अब बहुत कम ध्यान दिया गया है।

आजकल शिक्षण प्रक्रिया में सहायक सामग्री के महत्त्व पर काफी चर्चा होती है। छात्र को स्कूल के सामान्य वातावरण में जो सामग्री उपलब्ध नहीं होती वह सामग्री प्रस्तुत करने के लिए इनमें से कुछ का निर्माण किया जाता है जैसे चलचित्र, टेलिविजन, फिल्म स्ट्रिप, रिकॉर्ड, किताबें आदि। दूसरे प्रकार की सहायक सामग्री का कार्य छात्रों को किसी तथ्य, घटना आदि की संरचना समझने में मदद करता है जैसे मॉडल, चलचित्र, टेलिविजन व दक्षता पूर्वक चित्रित पुस्तकें। आजकल अध्यापन मशीनें बनने लगी हैं। ये सब साधन अध्यापन कला का ही विस्तार हैं ताकि अध्यापक का कार्यभार कुछ हल्का किया जा सके। यह समझने की बात है कि ये साधन कब उपयोगी होंगे या कब नहीं। जो बात स्वयं प्रयोग द्वारा बताई जा सकती है उसके लिए फिल्म प्रदर्शन व्यर्थ है। प्रयोग समझाने के लिए फिल्म तब बताई जानी चाहिए जब कि उसमें ऐसे जटिल यंत्रों या विधि का प्रयोग किया गया हो जो सामान्य प्रयोग शाला में संभव नहीं है। बात यह है कि चाहे फिल्म हो या अन्य दृश्य-श्रव्य साधन वे अध्यापक का स्थान कभी नहीं ले सकते। डॉ. ब्रूनर कहते हैं कि यदि संसार की सर्वोत्तम फिल्में भी शिक्षण की अन्य तकनीकों से असंबद्ध करके प्रदर्शित की जाएं तो वे छात्र में विषय के प्रति उदासीनता के अतिरिक्त कुछ भी विकसित नहीं कर सकतीं। दृश्य-श्रव्य साधनों का कब और किस प्रकार उपयोग किया जाए इसका निश्चय भी शिक्षण-कला में गहरी दृष्टि रखने वाला अध्यापक ही कर सकता है। जो लोग दृष्टि रखने वाला अध्यापक ही कर सकता है। जो लोग दृश्य-श्रव्य साधनों के उपयोग मात्र से अपने पाठ की सफलता आंकने लग जाते हैं, उनके लिए डॉ. ब्रूनर का यह विचार मनन योग्य है।

भारत में यों भी सहायक सामग्रियों की उपलब्धि की कठिनाई है वहां डॉ. ब्रूनर के कथनानुसार अध्यापक को ही शिक्षण प्रक्रिया में मुख्य साधन के रूप में मानना बहुत हितकर है। वे कहते हैं कि अध्यापक केवल ज्ञानदाता ही नहीं बल्कि एक जीवंत आदर्श भी होता है। उसका व्यक्तित्व शैक्षिक प्रक्रिया का प्रत्यक्ष प्रतीक होता है। वह एक ऐसी जीवंत प्रतिमा है जिससे विद्यार्थी तादात्म्य स्थापित करते हैं और उससे स्वयं की तुलना भी करते हैं। उत्साही, दृढ़-मत वाले, अनुशासित, अपने विषय के ज्ञाता, विनोदी किन्तु सहज गंभीर अध्यापक के व्यक्तित्व के प्रभाव को सभी याद करते हैं। अध्यापकों के कई ऐसे प्रभावबिंब हैं और वे सभी अमूल्य हैं। तथापि ऐसे अध्यापकों के कई विपरीत बिंब भी होते हैं जिन्होंने छात्रों के आत्म-विश्वास को नष्ट किया, उनकी आशाओं का गला घोंटा और जो आतंक की साक्षात मूर्ति थे।

डॉ. ब्रूनर का मत है कि यह जानने के लिए किसी विस्तृत अनुसंधान की आवश्यकता नहीं है कि ज्ञान का संप्रेषण मुख्यतः अध्यापक की विषयगत प्रवीणता पर निर्भर होता है। चाहे अध्यापक सहायक सामग्री का उपयोग करे या न करे। आधिकारिक समितियों के हाल के सर्वेक्षण से पता चला है कि प्राथमिक और माध्यमिक विद्यालयों के बहुत से अध्यापक अपने विषय को पढ़ाने के लिए प्रारंभ में पर्याप्त प्रशिक्षित नहीं होते। एक स्थिति यह भी है कि अध्यापन व्यवसाय में मांग अधिक होने से अच्छे तथा तत्पर अध्यापक को भी उस विशिष्ट ढंग से विषय को सीखने का पर्याप्त अवसर नहीं मिलता जो कि उसे उस विषय को पढ़ाने के फलस्वरूप आता है। अध्यापन ही सीखने का उत्कृष्ट तरीका है। जो भी हो पर आज अच्छे अध्यापकों की उपलब्धि में कठिनाई है। स्थिति में सुधार लाने के लिए अधिक अच्छे व्यक्तियों की भरती, चुनाव की अच्छी प्रणाली, शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों में अच्छा प्रशिक्षण, प्रभावी सेवारत और ग्रीष्मकालीन शिविर आदि के माध्यम से निरन्तर सचेष्ट रहा जाना चाहिए। ये सुधार डॉ. ब्रूनर की राय में शिक्षा की उन्नति संबंधी हमारी व्यग्रता और उत्सुकता की मात्रा पर निर्भर होंगे।

शिक्षा को नया रूप देने के लिए पुस्तक में लगभग सारे विचार नए हैं जिनका उदाहरण सहित तर्क सम्मत तरीके से विवेचन किया गया है। पुस्तक-प्रोसेस ऑफ एज्युकेशन का प्रथम संस्करण अमेरिका में सन् 1960 में प्रकाशित हुआ था। बाद में विश्व की अनेक भाषाओं में इसका अनुवाद हुआ। भारत में इसका हिन्दी में अनुवाद सन् 1980 में मेकमिलन कम्पनी ने प्रकाशित किया। इसके पूर्व इसका द्वितीय संस्करण सन् 1977 में ही अमेरिका में छपा। इसकी भूमिका में डॉ. ब्रूनर ने लिखा कि वे इस पुस्तक में कोई संशोधन नहीं कर सके। मन्तव्य स्पष्ट था कि शिक्षा के मूल सिद्धान्तों वाली बातों में संशोधन कैसा ? पर 1977 के प्राक्कथन में एक महत्त्वपूर्ण बात जो पाठ्यचर्या निर्माण के बारे में है, उन्होंने हमारा ध्यान आकर्षित किया है। वह यह कि शिक्षाक्रम शिक्षार्थियों के लिए नहीं बल्कि शिक्षक के लिए होता है। यदि वह शिक्षक में परिवर्तन नहीं ला सकता, उसे उद्विग्न, अनुप्राणित और प्रेरित नहीं कर सकता तो जिन छात्रों को वह शिक्षा दे रहा है उन पर भी कोई प्रभाव नहीं होगा। अतः सर्वप्रथम तो शिक्षाक्रम शिक्षक के लिए ही होना चाहिए। यदि इसका शिक्षार्थियों पर कुछ प्रभाव हुआ तो वह इसी कारण कि इससे शिक्षक प्रभावित है। उनके विचार से यह मत निरर्थक है कि भलीभांति निर्मित शिक्षाक्रम ज्ञान का वह समूह है जो जस का तस शिक्षार्थी को प्राप्त हो जाए।

पाठ्यक्रम और शिक्षण प्रक्रिया को नई दिशा देने में अग्रणी विश्व विख्यात शिक्षाविद् और मनोविज्ञानवेत्ता के ये सारे विचार भारत के शिक्षाशास्त्रियों और अध्यापकों के बड़े काम के हैं, चिन्तन व मनन योग्य हैं। शिक्षा से संबद्ध व्यक्तियों के लिए यह अत्यंत महत्त्वपूर्ण पुस्तक है। ◆